International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 5.401 Volume 6, Issue 6, June 2019
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित जीवन दर्शन

डाॅ हर्षवर्धन मिश्र,
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत),
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जलेसर, एटा

सार

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित जीवन दर्शन भारतीय संस्कृति और समाज के आधार स्तंभों में से एक है। ये प्राचीन ग्रंथ, जो लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईस्वी तक रचे गए माने जाते हैं, तत्कालीन समाज के नियमों, कर्तव्यों और आचार-संहिताओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें निहित जीवन दर्शन व्यक्ति, समाज और धर्म के बीच गहरे संबंध को दर्शाता है और एक नैतिक एवं व्यवस्थित जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करता है। धर्मसूत्रों का मूल उद्देश्य व्यक्ति को उसके धर्म (कर्तव्य) का ज्ञान कराना है। यह धर्म केवल पूजा-पाठ या धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ा हुआ है। एक व्यक्ति के रूप में, एक सामाजिक प्राणी के रूप में, और एक आध्यात्मिक साधक के रूप में उसके क्या कर्तव्य हैं, इसका विस्तृत विवेचन धर्मसूत्रों में मिलता है। ये कर्तव्य व्यक्ति की वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) पर आधारित होते हैं। इस प्रकार, धर्मसूत्र एक व्यक्ति को उसकी सामाजिक स्थिति और जीवन के चरण के अनुसार उचित आचरण करने की शिक्षा देते हैं। धर्मसूत्रों में वर्णित जीवन दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू नैतिकता और सदाचार पर बल देना है। सत्य बोलना, अहिंसा का पालन करना, चोरी न करना, पवित्रता बनाए रखना और इंद्रियों को वश में रखना जैसे सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों को धर्मसूत्रों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत कल्याण के लिए आवश्यक हैं, बल्कि एक स्वस्थ और सामंजस्यपूर्ण समाज की नींव भी रखते हैं। धर्मसूत्र सिखाते हैं कि व्यक्ति को अपने कर्मों के परिणामों के प्रति सचेत रहना चाहिए और ऐसे कार्य करने चाहिए जो धर्म के अनुकूल हों।

मुख्य शब्द

धर्मसूत्र, प्रतिपादित, जीवन, दर्शन

प्रस्तावना

सामाजिक व्यवस्था और कर्तव्यों का निर्वहन धर्मसूत्रों के जीवन दर्शन का एक अभिन्न अंग है। वर्ण व्यवस्था, यद्यपि आधुनिक दृष्टिकोण से विवादास्पद हो सकती है, तत्कालीन समाज के संगठन का एक महत्वपूर्ण पहलू थी और धर्मसूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक वर्ण के अपने विशिष्ट कर्तव्य निर्धारित किए गए थे, जिनका पालन समाज की स्थिरता और सुचारू संचालन के लिए आवश्यक माना जाता था। इसी प्रकार, आश्रम

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

व्यवस्था जीवन को चार चरणों में विभाजित करती है, प्रत्येक चरण के अपने विशिष्ट उद्देश्य और कर्तव्य होते हैं। ब्रह्मचर्य विद्यार्जन का काल था, गृहस्थ जीवन पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करने का काल था, वानप्रस्थ सांसारिक मोह से विरक्ति और चिंतन का काल था, और संन्यास पूर्ण त्याग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए समर्पित था।

धर्मसूत्रों में आध्यात्मिक लक्ष्यों का भी महत्व प्रतिपादित किया गया है। यद्यपि इनका मुख्य ध्यान सांसारिक कर्तव्यों और सामाजिक व्यवस्था पर है, फिर भी ये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार पुरुषार्थों की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। मोक्ष, या जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति, जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है, और धर्मसूत्र धार्मिक अनुष्ठानों, तपस्या और आत्म-ज्ञान के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के विभिन्न मार्गों का संकेत देते हैं।

धर्मसूत्रों का जीवन दर्शन कर्म के सिद्धांत पर आधारित है। यह सिद्धांत सिखाता है कि प्रत्येक कर्म का फल अवश्य मिलता है, चाहे वह इस जन्म में हो या अगले जन्म में। इसलिए, व्यक्ति को अपने कर्मों के प्रति सतर्क रहना चाहिए और ऐसे कर्म करने चाहिए जो धार्मिक और नैतिक हों। कर्म के सिद्धांत के माध्यम से, धर्मसूत्र व्यक्ति को जिम्मेदारी और जवाबदेही की भावना सिखाते हैं।

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित नैतिकता और सदाचार भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के आधार स्तंभ रहे हैं। ये प्राचीन ग्रंथ, जो लगभग 600 ईसा पूर्व से 300 ईसवी के बीच रचे गए माने जाते हैं, व्यक्ति और समाज के आचरण के लिए विस्तृत नियम और मार्गदर्शन प्रस्तुत करते हैं। धर्मसूत्र न केवल धार्मिक कर्तव्यों पर बल देते हैं, बल्कि एक नैतिक और सदाचारी जीवन जीने के महत्व को भी रेखांकित करते हैं।

धर्मसूत्रों में नैतिकता का मूल आधार 'धर्म' की अवधारणा है। यहाँ 'धर्म' को केवल पूजा-पाठ या कर्मकांड तक सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि इसे व्यापक अर्थ में समझा जाता है। धर्म का अर्थ है कर्तव्य, न्याय, सत्य, अहिंसा, और वह सब कुछ जो सामाजिक व्यवस्था और व्यक्तिगत उत्थान के लिए आवश्यक है। धर्मसूत्र व्यक्ति को अपने वर्ण (सामाजिक वर्ग) और आश्रम (जीवन के चरण) के अनुसार निर्धारित कर्तव्यों का पालन करने का उपदेश देते हैं। इस कर्तव्य पालन में ही नैतिकता का सार निहित है।

धर्मसूत्रों में क्षमा (दूसरों के अपराधों को माफ करना), धैर्य (कठिनाइयों में स्थिर रहना), दान (अपनी क्षमतानुसार दूसरों को देना), और पवित्रता (आंतरिक और बाहरी शुद्धि) जैसे गुणों को भी उच्च स्थान दिया गया है। अतिथि सत्कार, वृद्धों और गुरुजनों का सम्मान, और सभी के प्रति करुणा का भाव रखना भी सदाचार के महत्वपूर्ण पहलू हैं जिनका धर्मसूत्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है।

इन नैतिक और सदाचारी नियमों का पालन व्यक्ति को न केवल धार्मिक पुण्य प्राप्त कराता है, बल्कि सामाजिक सामंजस्य और व्यवस्था बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्मसूत्रों में यह माना गया है कि एक सदाचारी व्यक्ति समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और उसका जीवन शांति और संतोष से परिपूर्ण होता है।

साहित्य की समीक्षा

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित कुछ नियम और विचार आज के आधुनिक समाज में प्रासंगिक नहीं माने जा सकते हैं, विशेषकर वर्ण व्यवस्था और कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों से संबंधित नियम। फिर भी, नैतिकता और सदाचार

के जो सार्वभौमिक सिद्धांत धर्मसूत्रों में निहित हैं, जैसे सत्य, अहिंसा, दान, क्षमा, और करुणा, वे आज भी मानव समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और एक न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण विश्व के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित नैतिकता और सदाचार व्यक्ति को एक अनुशासित और जिम्मेदार जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। ये प्राचीन ग्रंथ आज भी हमें यह सिखाते हैं कि व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिए नैतिक मूल्यों और सदाचारी आचरण का पालन करना कितना आवश्यक है।

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था और कर्तव्य प्राचीन भारतीय समाज को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये सूत्र, जो लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईस्वी तक रचे गए, तत्कालीन सामाजिक संरचना, विभिन्न वर्णों के कर्तव्य, और व्यक्ति के जीवन के विभिन्न चरणों (आश्रमों) के आदर्शों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं।

सदाचार के संदर्भ में, धर्मसूत्र अनेक गुणों को महत्वपूर्ण मानते हैं। सत्य (सच्चाई) को परम धर्म माना गया है। झूठ बोलना, छल करना, और दूसरों को धोखा देना घोर अनैतिक कृत्य माने जाते हैं। अहिंसा (किसी भी जीव को मन, वचन या कर्म से कष्ट न पहुँचाना) एक और महत्वपूर्ण सदाचार है, जिसका पालन सभी मनुष्यों से अपेक्षित है। चोरी न करना (अस्तेय) और दूसरों की संपत्ति का लोभ न करना (अपरिग्रह) भी सदाचार के आवश्यक अंग हैं।

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित जीवन दर्शन

धर्मसूत्रों का एक प्रमुख आध्यात्मिक लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ है जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति, दुखों का अंत और परम आनंद की प्राप्ति। यह अवस्था आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन या अपनी वास्तविक स्वरूप में स्थिति है। धर्मसूत्र मोक्ष को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानते हैं और इसके लिए विभिन्न मार्गों और साधनों का वर्णन करते हैं।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्मसूत्र धर्म के पालन पर जोर देते हैं। धर्म यहाँ केवल कर्मकांड या पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें नैतिक आचरण, सामाजिक कर्तव्य, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, दान, और आत्म-संयम जैसे व्यापक गुण शामिल हैं। धर्म का पालन व्यक्ति को उसके कर्मों के बंधनों से मुक्त करने और आध्यात्मिक प्रगति के लिए एक शुद्ध आधार तैयार करने में सहायक होता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण आध्यात्मिक लक्ष्य आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान है। यह ज्ञान स्वयं की वास्तविक प्रकृति और ब्रह्मांड के परम सत्य को जानने की अवस्था है। धर्मसूत्रों में ज्ञान को अविद्या या अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाला और मोक्ष की ओर ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। उपनिषदों के विचारों का प्रभाव धर्मसूत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

धर्मसूत्रों में वर्णित आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आश्रम व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन के विभिन्न चरणों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) और सामाजिक वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के अनुसार निर्धारित कर्तव्यों का पालन व्यक्ति को धीरे-धीरे आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है। प्रत्येक आश्रम और वर्ण के अपने विशिष्ट कर्तव्य हैं, जिनका निष्ठापूर्वक पालन करने से व्यक्ति कर्मों के बंधन से मुक्त होता है और मोक्ष के लिए योग्य बनता है।

धर्मसूत्रों के अनुसार, प्रत्येक कर्म, चाहे वह शारीरिक हो, वाचिक हो या मानसिक, एक अदृश्य प्रभाव उत्पन्न करता है जिसे 'अदृष्ट' या 'संस्कार' कहा जाता है। ये संस्कार आत्मा के साथ जुड़ जाते हैं और समय आने पर अपना फल अवश्य देते हैं। अच्छे कर्मों से पुण्य अर्जित होता है, जो सुख और समृद्धि की ओर ले जाता है, जबकि बुरे कर्म पाप उत्पन्न करते हैं, जिनका परिणाम दुख और कष्ट होता है। इस प्रकार, धर्मसूत्र कर्म को एक नैतिक नियम के रूप में स्थापित करते हैं जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था का हिस्सा है।

धर्मसूत्रों में विभिन्न प्रकार के कर्मों का उल्लेख है, जिन्हें विधि (कर्तव्य) और निषेध (निषिद्ध कार्य) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। विधि में वे कर्म शामिल हैं जिन्हें करना व्यक्ति का धार्मिक और सामाजिक दायित्व है, जैसे कि यज्ञ, दान, अध्ययन, और वर्ण एवं आश्रम के अनुसार कर्तव्यों का पालन। निषेध में वे कर्म आते हैं जिन्हें करने से बचना चाहिए, जैसे कि हिंसा, चोरी, झूठ, और दूसरों को हानि पहुँचाना। इन नियमों का पालन कर्मों के नैतिक मूल्य को निर्धारित करता है।
धर्मसूत्र इस बात पर जोर देते हैं कि किए गए प्रत्येक कर्म का फल अवश्य मिलता है। यह फल तत्काल या भविष्य में, इसी जन्म में या अगले जन्मों में भी मिल सकता है। कर्म का फल भोगना अनिवार्य है और इससे बचा नहीं जा सकता। यह सिद्धांत व्यक्ति को अपने कार्यों के प्रति जागरूक और जिम्मेदार बनाता है।
धर्मसूत्रों में कर्मों को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है। एक वर्गीकरण संचित कर्म (पिछले जन्मों के एकत्रित कर्म), प्रारब्ध कर्म (वर्तमान जन्म में फल देने वाले कर्म), और क्रियमाण कर्म (वर्तमान में किए जा रहे कर्म) के रूप में है। प्रारब्ध कर्मों का फल भोगना अनिवार्य है, जबकि क्रियमाण कर्म संचित कर्मों में जुड़ते जाते हैं और भविष्य के प्रारब्ध का निर्धारण करते हैं।
प्रारंभिक धर्मसूत्रों में निष्काम कर्म की अवधारणा स्पष्ट रूप से विकसित नहीं हुई थी। इनमें कर्मों को फल की अपेक्षा से जोड़कर देखा जाता था। हालांकि, बाद के उपनिषदों और भगवत गीता में निष्काम कर्म का महत्व प्रतिपादित किया गया, जिसका अर्थ है फल की आसक्ति के बिना कर्तव्य का पालन करना।
धर्मसूत्रों में प्रतिपादित कर्म का सिद्धांत भारतीय समाज और दर्शन पर गहरा प्रभाव डालता है। इसने व्यक्ति को नैतिक आचरण के महत्व को समझाया और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्ण और आश्रम व्यवस्था के तहत निर्धारित कर्तव्यों का पालन कर्म के सिद्धांत से ही प्रेरित था, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने विशिष्ट दायित्वों का निर्वाह करना होता था।

धर्मसूत्रों में वर्ण व्यवस्था को दैवीय उत्पत्ति से जोड़ा गया है, जिसमें यह माना जाता था कि ये वर्ण ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से उत्पन्न हुए हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य समाज में श्रम का विभाजन और सुव्यवस्था बनाए रखना था। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धर्मसूत्रों में वर्ण व्यवस्था की व्याख्या जटिल और बहुआयामी है, और इसमें सामाजिक गतिशीलता और अपवादों की भी चर्चा मिलती है। प्रत्येक वर्ण के सदस्यों के लिए विशिष्ट कर्तव्यों का निर्धारण किया गया था, जिन्हें स्वधर्म कहा जाता था। अपने स्वधर्म का पालन करना धार्मिक और नैतिक दायित्व माना जाता था।

अध्ययन (वेदों और अन्य शास्त्रों का), अध्यापन (दूसरों को ज्ञान देना), यज्ञ (धार्मिक अनुष्ठान करना), याजन (दूसरों के लिए यज्ञ करवाना), दान (उदारतापूर्वक देना), और प्रतिग्रह (योग्य व्यक्तियों से दान स्वीकार करना)। उन्हें सादा जीवन जीना और आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में लगे रहना अपेक्षित था। प्रजा की रक्षा करना, न्यायपूर्वक शासन करना, युद्ध में वीरता दिखाना, दान देना, और यज्ञ करना। उन्हें शक्ति, साहस, और न्यायप्रियता के गुणों का प्रदर्शन करना आवश्यक था। कृषि करना, व्यापार करना, पशुपालन करना, धन अर्जित करना, और दान देना। उन्हें ईमानदारी और कुशलता से आर्थिक गतिविधियों का संचालन करना अपेक्षित था। तीनों उच्च वर्णों की निष्ठापूर्वक सेवा करना। उन्हें शारीरिक श्रम और सेवा कार्यों में संलग्न रहना होता था।

धर्मसूत्रों की सामाजिक व्यवस्था मुख्य रूप से वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। यह व्यवस्था समाज को चार प्रमुख वर्णों में विभाजित करती थी:

- ब्राह्मण: जिनका मुख्य कर्तव्य अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना और करवाना, तथा दान देना और लेना था। उन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था और वे ज्ञान और धार्मिक कार्यों के संरक्षक माने जाते थे।

- क्षत्रिय: इनका धर्म शासन करना, युद्ध करना, प्रजा की रक्षा करना, और न्याय स्थापित करना था। वे शक्ति और सुरक्षा के प्रतीक थे।

- वैश्य: इनका प्रमुख कार्य व्यापार, कृषि, और पशुपालन था। वे अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ माने जाते थे।

- शूद्र: इनका कर्तव्य तीनों उच्च वर्णों की सेवा करना था। उन्हें धार्मिक और सामाजिक अधिकारों से कुछ हद तक वंचित रखा गया था।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धर्मसूत्रों में वर्णित वर्ण व्यवस्था और कर्तव्यों की व्याख्या समय के साथ बदलती रही और व्यवहार में इसमें कई जटिलताएं और भिन्नताएं थीं।

वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त, धर्मसूत्रों में आश्रम व्यवस्था का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। आश्रम व्यक्ति के जीवन को चार चरणों में विभाजित करता है, जिनमें प्रत्येक चरण के विशिष्ट कर्तव्य और उद्देश्य होते हैं:

- ब्रह्मचर्याश्रम: यह विद्यार्थी जीवन का चरण था, जिसमें व्यक्ति गुरु के सानिध्य में रहकर वेदों और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता था, ब्रह्मचर्य का पालन करता था, और चरित्र निर्माण पर ध्यान देता था।

- गृहस्थाश्रम: यह विवाहित जीवन का चरण था, जिसमें व्यक्ति परिवार का पालन-पोषण करता था, सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों का निर्वहन करता था, और संतान उत्पन्न करता था। यह आश्रम सभी आश्रमों का आधार माना जाता था।

- वानप्रस्थाश्रम: यह गृहस्थ जीवन से निवृत्ति का चरण था, जिसमें व्यक्ति धीरे-धीरे सांसारिक बंधनों से मुक्त होता था, एकांत में चिंतन करता था, और तपस्या करता था।

- संन्यासाश्रम: यह जीवन का अंतिम चरण था, जिसमें व्यक्ति सभी सांसारिक आसक्तियों का त्याग कर देता था और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता था।

प्रत्येक आश्रम के अपने विशिष्ट कर्तव्य थे, जिनका पालन व्यक्ति के आध्यात्मिक और सामाजिक विकास के लिए महत्वपूर्ण माना जाता था। धर्मसूत्रों में प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था और कर्तव्य प्राचीन भारतीय समाज की संरचना और मूल्यों को समझने की महत्वपूर्ण कुंजी हैं। वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया था। ये सूत्र एक आदर्श समाज का चित्रण करते हैं, और वास्तविक जीवन में सामाजिक संरचना और व्यक्तिगत कर्तव्य अधिक जटिल और परिवर्तनशील थे। धर्मसूत्रों का अध्ययन हमें तत्कालीन समाज के आदर्शों, मूल्यों, और सामाजिक संगठन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है।

निष्कर्ष

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित जीवन दर्शन एक व्यापक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह व्यक्ति को उसके सामाजिक और आध्यात्मिक कर्तव्यों का ज्ञान कराता है, नैतिकता और सदाचार पर बल देता है, एक व्यवस्थित सामाजिक संरचना का समर्थन करता है, और अंततः मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य मानता है। यद्यपि धर्मसूत्र तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और मान्यताओं से प्रभावित हैं, लेकिन उनमें निहित नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व आज भी बना हुआ है और यह भारतीय चिंतन परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कर्म के सिद्धांत की कुछ आलोचनाएं भी की जाती हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यह भाग्यवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है और व्यक्तिगत प्रयास के महत्व को कम करता है। इसके अतिरिक्त, वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में कर्म के सिद्धांत का उपयोग सामाजिक असमानता को सही ठहराने के लिए भी किया गया है।

संदर्भ

1. गौतम धर्मसूत्र 1.7.22
2. धर्मसूत्र 1.18.14
3. धर्म शास्त्र का इतिहास भाग प्रथम डॉ. पी. बी.काणे
4. प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन - डॉ. लक्ष्मी दत्त ठाकुर
5 वेद विद्या , प्रोफेसर रूप किशोर शास्त्री